शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवम्बर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतीय संस्कृति में विज्ञान परम्परा

कु. विक्टोरिया (शोधार्थी)
डॉ. अनिता प्रकाश
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद
चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय
मेरठ, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

संस्कृति एक अमूर्त पद है जिसे वैज्ञानिक पदों की भांति परिभाषा की सीमा में बांधना समीचीन प्रतीत नहीं होता। मनुष्य के जीवन का मापदंड दो पदों में परिभाषित होता है 'सभ्यता व संस्कृति। सभ्यता जहाँ मनुष्य के भौतिक विकास को दर्शाती है, वहीं संस्कृति उसके संस्कारों व मौलिक विकास के दर्शन कराती है। संस्कृति एक ऐसा वातावरण है जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है और प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है। संस्कृति एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों, मानव व्यवहार के तरीकों, अनेक भौतिक व अभौतिक प्रतीकों, परंपराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवी क्रियाओं और आविष्कारों को शामिल करते हैं। सर्वप्रथम वायु पुराण में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष विषयक मानवीय घटनाओं को संस्कृति के अंतर्गत समाहित किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय संस्कृति में विज्ञान परम्परा के सूत्रों का विश्लेषण किया गया है।

भूमिका

प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति में विज्ञान तत्व की प्रधानता देखी जा सकती है या यूं कहें कि भारतीय संस्कृति विज्ञान की गति का उत्कृष्टतम स्वरूप है, जिसे प्राचीन भारतीय ऋषियों व नीति नियंताओं ने भारतीय मानस के सामने आध्यात्मिक रूप में रखा। आध्यात्मिक मार्ग एक ऐसा मार्ग है, जो विकसित होकर संसार के भौतिक व अभौतिक तत्वो का ज्ञान मनुष्य के समक्ष रखता है ताकि मनुष्य प्रकृति द्वारा निर्मित इस संसार की रचना के आंतरिक कारणों को भली-भांति समझ सके। वह स्वयं को उसके अनुसार ढालकर प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके। हीगल का मत है कि "संसार की प्रत्येक वस्तु अपूर्ण है और पूर्णता के मार्ग पर अग्रसर है अतः पूर्णता प्राप्ति के मार्ग को हम विज्ञान एवं पूर्णता के उच्च बिंदु को अध्यात्म कह सकते हैं जहाँ पहुँचकर यात्रा समाप्त हो जाती है।" स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि "विज्ञान एकत्व की खोज है, खोज के सिवाय कुछ नहीं है। ज्यों ही कोई विज्ञानशास्त्र पूर्ण एकत्व तक पहुँच जाता है त्यों उसका और आगे बढ़ना रुक जाएगा, क्योंकि तब वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुकेगा। उदाहरणार्थ रसायन शास्त्र यदि एक बार उस एक मूल द्रव्य का पता लगा लेगा, जिससे और सब द्रव्य बन सकते हैं, जिससे अन्य शक्तियाँ बाहर निकलती हैं, तो वह

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 नवम्बर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

आगे नहीं बढ़ सकेगा तब वह पूर्णता पर पहुँच जाएगा वैसे ही धर्मशात्र भी उस पूर्णता को प्राप्त हो जाएगा जब वह उस मूल कारण को जान लेगा जो इस मृत्यु लोक में एकमात्र अमृत स्वरूप है, जो इस नित्य परिवर्तनशील जगत का एक मात्र अचल अटल आधार है, जो एकमात्र परमात्मा है व अन्य सभी आत्माएँ जिसके प्रतिबिंब स्वरूप हैं। इस प्रकार अनेकेश्वरवाद, द्वैतवाद आदि में से होते हुए इस अद्वैतवाद की प्राप्ति होती है धर्मशास्त्र इससे आगे नहीं जा सकता, यही सारे विज्ञानों का चरम लक्ष्य है।"[1]

वर्तमान जगत में विज्ञान को भिन्न भिन्न अर्थों में परिभाषित किया गया है, जो कि सम्पूर्ण सृष्टि को अनेक भागों में बांटकर उसके अलग-अलग भागों से संबंधित ज्ञान को प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न मार्गों का चयन करता है। लेकिन भारतीय संस्कृति में हमारे प्राचीन ऋषियों ने विज्ञान की सभी शाखाओं को एक मार्ग पर समाहित कर उसे अध्यात्म का नाम दिया है। आधुनिक वैज्ञानिक जिन नवीन सिद्धान्तों व प्राकृतिक नियमों के ज्ञान की खोज का दावा वर्तमान में प्रस्तुत करते हैं उसे हमारे प्राचीन दृष्टाओं ने हजारों वर्ष पूर्व ही प्राप्त कर लिया था। धीरे-धीरे आधुनिक विश्व ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है एवं अपने व्याख्यानों के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है कि भारतीयों का विश्व सम्बन्धि प्राचीन ज्ञान किसी भी अर्थ में आज की अपेक्षा कम नहीं था।

श्री जवाहरलाल नेहरू के अनुसार संस्कृति का अर्थ "`मनुष्य का आंतरिक विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, पारस्परिक सद्व्यवहार है, और एक दूसरे को समझने की शक्ति है।" सामान्य अर्थ में सीखे हुए व्यवहारों की पूर्णता एवं किसी समाज में निहित उच्चतम मूल्यों की चेतना जिसके अनुसार वह समाज अपने जीवन को ढालना चाहता है, संस्कृति कहलाती है।

भारतीय संस्कृति में विज्ञान परम्परा

भारतीय संस्कृति सहस्रों वर्षों से चली आ रही एक विचारधारा है जिसका विकास हिंदू, बौद्ध, जैन आचार्य एवं ऋषियों ने अपने मौलिक चिंतन के माध्यम से किया है। इसकी वैज्ञानिकता और ताजगी का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसे कभी भी एक या दो ग्रंथों में कैद नहीं किया जा सकता। हिंदू चिंतकों एवं आधुनिक वैज्ञानिकों के निष्कर्षों में अपूर्व समानता के कारण भारतीय संस्कृति की अनेक मान्यताओं में गंभीर वैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। अब हिंदू आध्यात्मिक प्रतीकों संकल्पनाओं और मान्यताओं के वैज्ञानिक आधार की भूमिका बन चुकी है जिसका आधार कुछ गंभीर वैज्ञानिक विश्लेषण है।"[2] बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टीफन हाकिंस ने सिद्ध किया था कि आज के ब्रहमांड की उत्पत्ति एक ऐसे श्याम विवर (ब्लैकहोल) के महाविस्फोट से हुई है, जिसमें द्रव्यमान असहनीय सीमा तक संघनित हो गया था, जिसे विज्ञान की भाषा में ब्रहमांडीय अंडा कहा गया है। इसी सिद्धान्त को अगर भारतीय सांस्कृतिक हिंदू धार्मिक ग्रंथों में टटोलने का प्रयास करें तो निश्चित ही निराशा नहीं होगी क्योंकि ऋग्वेद में संपूर्ण सृष्टि ब्रहमांड का उदगम हिरण्यगर्भ से माना गया है।[3] अतः स्टीफन के ब्लैकहोल एवं हिरण्यगर्भ में समानता देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति का वह रूप जो सभी को आडंबर एवं अंधविश्वास होने का भान कराता है, वह वास्तव में एक गहन वैज्ञानिक सोच व चिंतन का परिणाम है। जिसे गंभीरता से मनन करने पर इस अतुल ज्ञान कोष के संदर्भ में भी पुरातन हिंदुत्व की असंदिग्ध प्रासंगिकता सूर्य की

प्रथम रश्मियों की भांति उजागर होने लगती है। भौतिकशास्त्री फिटजोफ कैप्रा अपनी पुस्तक 'ताओं ऑफ़ फिजिक्स में लिखते हैं कि बीसवीं शताब्दी के भौतिक शास्त्र के दो शिलाधार 'क्वांटम सिद्धान्त' तथा 'सापेक्षवाद', विवश कर देते हैं कि हम इस विश्व को उसी प्रकार से परखें जैसा कि हिंदू बौद्ध एवं ताओ दार्शनिकों ने अनुभव किया।

इसी प्रकार का व्याख्यान परमाणु भौतिकी के पुरोधा जूलिया राबर्ट ओपेनहेग ने किया है कि "परमाणु भौतिकी के स्तंभकारी अनुसंधान किसी भी तरह सर्वथा नये नहीं कहे जा सकते। उनके बीज निश्चित रूप से हमारी प्राचीन संस्कृतियों हिंदू व बौद्ध के पहले से ही विद्यमान हैं।[4] भारतीय संस्कृति ओर विज्ञान के घनिष्ठ संबंधों पर प्रकाश डालते हुए भौतिकविद फिटजाफ कैप्रा ने बताया है कि "क्योंकि मैं एक भौतिकशास्त्री हूँ इसलिए मुझे पृथ्वी पर ब्रहमांड से अनवरत बरसती कास्मिक किरणों का ज्ञान है और एक दिन समुद्र किनारे बैठे हुए मैंने अद्भुत अनुभूति प्राप्त की, जो अकथनीय हैं परन्तु जब मैं शिव तांडव का प्रतीक नटराज की मूर्ति को देखा हूँ तो वह अनुभूति साकार हो उठती हैं, शिव के दो हाथों में डमरू व ज्वाला दोनों ही ध्वंस का प्रतीक हैं और बाकी शेष हाथों की कलात्मक मुद्राएं सर्जन का प्रतीक है जो इस सतत गतिशीलता को संचालित करने वाला असंख्य प्राकृतिक मूलभूत घटनाओं की लयबद्ध एकत्व को तथा इस तथ्य को उजागर करता है कि वे सब एक दूसरे से उपजती हैं और फिर एक दूसरे में ही विलीन हो जाती हैं। अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति विकास व अंत।[5] उन्होंने आगे लिखा कि ऐसे विश्व का सर्वाधिक उच्च कोटि का प्रतीक शिव तांडव ही हो सकता है जो आभास देता है महान सत्य का, कि ब्रहमांड में सभी कुछ स्थिर है, चलायमान है और अनवरत परिवर्तनशील है, मूलभूत कणों की आपस में प्रक्रिया कर कणों को जन्म देना अथवा अपने ही को ध्वंस कर लेने की अकुलाहट ही तो सब एटामिक वर्ल्ड की पहचान है। मायकेल टैलवाट के अनुसार "शिव के मस्तक की केश राशि तथा मैग्नेटिक लाइन आफ फोर्स की गुथी हुई लकीरों में निर्मित जालक में अद्भुत समानता है।"[6]

भारत में मां का दर्जा प्राप्त गंगा नदी भले ही आज अपने प्राचीन शुद्ध रूप को खो चुकी हो, लेकिन यह कथन सत्य है कि गंगा नदी भारत में सबसे पवित्र वह पूजनीय इसीलिए मानी जाती थी, क्योंकि उसका पानी शुद्धता की उत्कृष्टता को छूता था। लोगों का यह मत कि गंगा में स्नान करने से रोग दूर हो जाते हैं महज अंधविश्वास नहीं है। आज वैज्ञानिक प्रयोग एवं अनुसंधानों के द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गंगाजल में जीवाणुओं एवं अन्य सूक्ष्म जीवों को नष्ट करने वाला विषाणु (वायरस) पाया जाता है, जिसे वैज्ञानिक विज्ञान की भाषा में रोगाणुभोजी कहते हैं। गंगा जल में आक्सीजन सदैव उच्च मात्रा में घुला होता है, जिसके कारण यह जल अधिक समय तक रखने पर भी दूषित नहीं होता और इसी कारण गंगाजल कुछ बीमारियों के लिए अत्यधिक उपयोगी होता है।[7] पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा इस तथ्य की खोज की गई है कि गंगा जल में हैजा के जीवाणु छोडने पर वह स्वत: ही समाप्त होने लगते हैं[8] और इसीलिए उसे जल न मानकर अमृत रूप माना गया है और उसकी शुद्धता को बचाए रखने के लिए एवं उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए भारतीय प्राचीन ऋषियों व नीति-नियंताओं ने गंगाजल की पूजा का विधान रखा।

अतः कह सकते है कि उनकी सोच वैज्ञानिक रही होगी और उन्होंने आधुनिक वैज्ञानिकों के समान ही गहन शोध एवं प्रयोगों के आधार पर इस प्रकार की मान्यताएं बनाई जो हजारों वर्षों बाद भी प्राचीन काल के समान ही अपनी वैज्ञानिकता एवं वास्तविकता पर तटस्थ है। कोई भी प्राचीन मान्यता निरर्थक नहीं है।

हिन्दू धर्म में वर्णित अवतारवाद में भी भौतिक विज्ञान के तत्व देखे जा सकते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से सत्य तक पहुँचने पर बल देते हैं परंतु से इलेक्ट्रान, प्रोटान, विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र, गुरूत्वाकर्षण बल आदि को अपनी पांच ज्ञानेंद्रियों से सीधे सीधे नहीं देख पाते, वे लोग केवल इनके प्रभावों को ही देख कर उन तर्कों के आधारपर ही उनका अस्तित्व सिद्ध करते हैं, तो क्या इसी प्रकार अवतारवाद भी एक ऐसा ही प्रभाव नहीं हो सकता। निर्गुण इंद्रियातीत ईश्वर है या नहीं उसका स्वरूप क्या है, गुण धर्म क्या है, कौन देख सकता है लेकिन उसको द्वितीय प्रभाव 'अवतारवाद' के रूप में समझा जा सकता है। सगुण रूप उस निर्गुण की पहचानने का माध्यम है।[9]

गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं कि 'सगुणोपासक कभी केवल्य नहीं प्राप्त कर सकते क्योंकि उनकी आत्मा परमात्मा से एकाकार नहीं हो सकती। उसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि द्वितीय प्रभाव के माध्यम से सत्य का आभास तो किया जा सकता है, परंतु उसका साक्षात्कार नहीं।' जिस प्रकार भौतिक जगत का आधार अणु है, जो एक है उसी प्रकार जगत का आधार ईश्वर एक है। विज्ञान में अणुओं के अनुनादी रूपों पर बेंजीन के कम से कम 2 चित्रात्मक रूप अत्यधिक प्रचलित हैं क्योंकि एक चित्र के माध्यम से अणु को तथ्यात्मक रूप में प्रदर्शित करना असंभव है। इसलिए एक से अधिक चित्रों का सहारा लेना पडता है, उसी प्रकार हिंदुत्व में बहु देववाद की संकल्पना की गई है जो ब्रह्मा, विष्णु महेश जगत के रचनाकार, पालनहार, विध्वंसक के रूप में हैं। ईश्वर को एक रूप में समझना केवल केवल्य के ही अधिकार क्षेत्र हैं सामान्य मनुष्य इसे विभिन्न रूपों के माध्यम से ही समझ सकता है।[10] एक अन्य प्रसिद्ध धारणा अहम् ब्रह्मास्मि की व्याख्या भी विज्ञान के संदर्भ में की जा सकती है। विश्व में सर्वत्र एक ही ऊर्जा विद्यमान है और विज्ञान कहता है कि संपूर्ण विश्व की भांति हमारा शरीर समान प्रकार के मूल कणों से बना है तथा सभी कुछ एक ही ऊर्जा से संचालित है। हिंदू संस्कृति इसी ऊर्जा को आत्मन मानता है जो कि छोटे से छोटे एवं बडे. से बड़े सभी जीवों में उपस्थित होता है। यही अहम् ब्रहमास्मि को प्रदर्शित करता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में वैज्ञानिकों ने फोटोग्राफी के क्षेत्र में एक नवीन चेतन पदार्थ खोज निकाला, जिसे प्रभामंडल कहा गया है। वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी पर उपस्थित प्रत्येक चेतन पदार्थ का अपना एक प्रभामंडल होता है, क्योंकि इस तथ्य की खोज डाक्टर किरलियन ने की थी इसलिए इसे किरलियन प्रभाव कहते हैं। किरलियन ने अपने प्रयोगों व शोधों से सिद्ध कर दिया कि व्यक्ति के शरीर के चारों तरफ कुछ प्रकाशपुंज के समान होता है, जिसे यंत्रों की सहायता से देखा जा सकता है। किरलियन के अनुसार किसी भी पदार्थ का प्रभाव मंडल उसके ऊर्जा पक्ष को प्रदर्शित करता है। जीवों के शरीर के संबंध में कहा जा सकता है कि वस्तुतः उनके दो शरीर होते हैं दैहिक शरीर और जैविक शरीर। ऊर्जा शरीर संभवत दैहिक

शरीर से बड़ा होता है, इसलिए दैहिक शरीर से थोडा बाहर निकला होता है। ऊर्जा शरीर का यही भाग प्रभामंडल कहलाता है। किरलियन कहते हैं कि जब दैहिक शरीर बीमारी से ग्रस्त होता है तो उससे पूर्व ही उसका प्रभामंडल प्रभावित हो जाता है। यह प्रयोग उन्होंने स्वयं अपने मित्र पर ही किया था। भारतीय अध्यात्मवादियों के लिए प्रभामंडल कोई नई वस्तु नहीं है। प्राचीनकाल से ही न केवल हिंदू देवी-देवताओं एवं साधु संतों के चित्रों में उनके मस्तिष्क के पीछे चारों ओर प्रभामंडल दिखाया जाता है रहा है, बल्कि अन्य धर्मावलंबियों ने भी धार्मिक चित्रों में प्रभामंडल का प्रयोग किया है। इतना ही नहीं थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य भी प्रभामंडल के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं।[11]

1979 में मद्रास के सरकारी अस्पताल के न्यूरो सर्जरी विभाग के अध्यक्ष डाक्टर पी. नरेंद्र ने भी इस क्षेत्र में शोध कार्य प्रारंभ किया। उन्होंने एक ऐसी मशीन बनाई जिसकी सहायता से प्रभामंडल को स्पष्ट देखा जा सकता था। उनके इस प्रकार के लेख विदेशों में भी प्रकाशित किए गए। पिछले वर्षों में महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के भौतिक विभाग के प्रधानाध्यापक डाक्टर बी.आर. गोयल तथा डाक्टर ए.के. शर्मा ने भी इस क्षेत्र में अनुसंधान किए। आकाशवाणी रोहतक को दिए अपने एक इंटरव्यू में उन्होंने बताया कि "निर्जीव वस्तुओं का प्रभामंडल मंद दीप्ति वाला एवं सदा एक सा बना रहने वाला होता है। इसके विपरीत प्राणवान का प्रभामंडल अतिशय ज्योतिष किरणों से बना होने के कारण चकाचौंध उत्पन्न करने वाला होता है एवं वह स्वास्थ्य एवं दैहिक परिवर्तनों के साथ परिवर्तित भी होता रहता है।[12] प्रभामंडल के छायांकन का अध्ययन एवं महत्व निर्विवाद है रोगों के पहचान में तो इसकी उपयोगिता स्पष्ट ही है शायद इनके उपचार में भी यह कारगर हो सके।

भारतीय परंपरा एवं आधुनिक विज्ञान प्रारंभ में इसलिए अलग-अलग दिखते रहे, क्योंकि सत्य को प्रकट करने के ढंग भिन्न भिन्न थे, जैसा कि जैन धर्म में 'स्यादवाद' सिद्धांत के माध्यम से कहा गया है कि सत्य इतना व्यापक है कि उसे किसी एक मार्ग द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता। उसके लिए अनेक मार्ग भी हो सकते हैं और सभी सही भी हो सकते हैं। अतः सत्य को परिसीमा में बांधकर दूसरे के मत को बिना समझे वह परखे नकार देना मूर्खता ही होगी। भारतीय मुनियों ने विज्ञान के मूल सिद्धान्तों की चर्चा आध्यात्मिक प्रतीकों की भाषा में की है, जो किंचित ही गूढ है। देखने में अनेकार्थी है, श्लेषयुक्त लगती है और दूसरी और विज्ञान इन्हें गणित के कठिन सूत्रों की भाषा में निकटतम शुद्धता से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। भारतीय संस्कृति एवं वैज्ञानिक निष्कर्षों की समानता पर कोई भी मनुष्य दांतों तले उंगली दबा ले। यह हमारा दुर्भाग्य ही था कि समय के साथ चिंतन का प्रभाव अवरूद्ध होने लगा और गंभीर विचारों की गंगोत्री एक बंधे हुए जलाशय में बदल गई। स्वभाविक था कि हिंदुत्व का प्रथम और प्रांजल स्वरूप लुप्त होने लगे, परंतु सत्य दीर्घकाल तक आवरण में नहीं रह सकता। समय फिर बदल रहा है और साथ ही प्राचीन संस्कृति की वैज्ञानिक प्रासंगिकता उजागर होने लगी है। सितंबर 2005 में भारत दर्शन के लिए आए एक दर्शन मंडल ने मीडिया के समक्ष आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा था कि "भारत की जड़ें अत्यंत गंभीर व सशक्त हैं फिर भी यहां के लोग पश्चिम की भौंडी नकल करने को आतुर क्यों हैं।"[13]

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 नवम्बर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

विज्ञान का क्षेत्र 'क्या है', जबकि धर्म शास्त्रों एवं अध्यात्म का क्षेत्र 'क्यों' है। आइंस्टीन ने सच कहा था कि "थोडा-सा विज्ञान हमें धर्म से दूर ले जाता है और बहुत अधिक विज्ञान हमें वापस अपने धर्म की ओर ले आता है।" अतः यह तथ्य स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि भारतीय संस्कृति की मान्यताओं के पीछे भी भारतीय मनीषियों की एक गंभीर शोध परंपरा रही होगी। इतने सटीक प्रमाण जो आज 21वीं सदी में भी पूर्णतः प्रमाणित है और भविष्य में भी अपनी प्रमाणिकता को प्रदर्शित करते रहेंगे। निश्चित ही ये एक गम्भीर शोध परंपरा के बाद दिए गए प्रमाणित निष्कर्ष है। भारतीय संस्कृति का क्षेत्र अति व्यापक है उसे कुछ एक ग्रंथों में समाहित करना संभव नहीं और ना कुछ उदाहरणों से इसका संपूर्ण विवरण प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय आध्यात्मिक साहित्य इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पडा है, जब प्रतीत होता है कि जिन वैज्ञानिक खोजों की प्राप्ति की चर्चा वर्तमान वैज्ञानिक करते हैं उनका ज्ञान हमारे प्राचीन मुनियों को पहले से रहा था। फिर वह चाहे गणित हो, चिकित्साशास्त्र हो, ज्योतिष विज्ञान हो, भौतिकशास्त्र हो, रसायनशास्त्र अथवा वास्तुशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में हमारे पूर्वज ऋषियों को उत्कृष्ट कोटि का ज्ञान प्राप्त था जिसकी प्रसांगिकता तब से अब तक कम नहीं हुई है। अतः यह कह सकते है कि देर से ही सही परन्तु भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता को अब विश्व ने पहचाना है और अगर यह कहें कि पश्चिम का विज्ञान प्राचीन भारतीय ग्रंथों एवं पांडुलिपियों को ही आधार मानकर गतिशील है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि प्राचीनकाल से ही पाश्चात्य यात्री भारत में ज्ञान पिपासा की शांति हेतु आते रहे हैं और यहां के साहित्य को अपने साथ ले जाते रहे हैं जो उनके ज्ञान का आधार बना।[14] प्राचीनकाल से ही धर्म ग्रंथ एवं भारतीय पांडुलिपियों को भारत से अपने देश ले जाने का सिलसिला ब्रिटिश काल तक जारी रहा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 स्वामी विवेकानन्द, शिकागो वृत्तान्त प्रकाशक स्वामी ब्रहास्यानन्द, रामकृष्ण मठ, नागाडर, संस्करण 2018

2 अग्रवाल डॉ. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत अध्यात्म और विज्ञान, सुरुची प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2013

3 वही, पृष्ठ 38, हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् सदाधारंपृश्वी धामुतेमा कस्मै देवाय हविधा विधेम्

4 वही, पृष्ठ 32

5 वही, पृष्ठ 29

6 वही, पृष्ठ 30

7 भारत सरकार पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, पत्रिका अंक 68 मार्च 2017, डॉ. राजेश कुमार का लेख, पृष्ठ 34

8 शर्मा आचार्य राम चरण भारतीय, वही, पेज 38 के आधारभूत तत्व प्रकाशक अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा द्वितीय संस्करण 1998

9 (डॉ.) अग्रवाल ओम प्रकाश, प्राचीन भारत अध्यात्म और विज्ञान, सुरूची प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 2013, पृष्ठ 37

10 वही, पृष्ठ 36

11 वही, पृष्ठ 62

12 भारतीय मान्यताओं का वैज्ञानिक आधार डॉ. द्विवेदी भोजराज, प्रकाशक डायमंड बुक प्रा लि

13 वही, पृष्ठ 26

14 (डॉ.) जैन नन्दलाल सर्वोदय जैनतन्त्र, पृष्ठ 38